Year-8; Sept. 2017
ISSN–2231-1130
UGC Sr. No. – 48398
VEETHIKA

वैश्वीकरण : स्त्री विमर्श का बदलता स्वरूप

राखी देवी*

वैश्वीकरण का तात्पर्य एक ऐसे वैश्विक समाज से है जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं और दूरियों से परे एकीकृत व्यवस्था, प्रावधान व प्रक्रियाओं में समानता हो। इसे भूमण्डलीकरण, विकेन्द्रीकरण एवं वि–सामंतीकरण जैसे शब्दों से भी संबोधित करते हैं। वैश्वीकरण मूल रूप से आर्थिक सुधार एवं प्रगति से संबंधित प्रक्रिया है। वैश्वीकरण जहाँ एक ओर संवाद की बात करता है, वहीं दूसरी ओर आकाशीय तथ्यों पर भी जोर देता है। इसके तीन आर्थिक पहलू होते हैं खुला अंतराष्ट्रीय बाजार, अंतरराष्ट्रीय निवेश और अंतरराष्ट्रीय व्यक्ति। इसका उद्देश्य सभी देशों को एकीकृत बाजार में रूपांतरित करना है।

वैश्वीकरण के चिंतन का उदय मुख्य रूप से अस्सी व नब्बे के दशक के आस–पास हुआ, परन्तु इसकी अवधारणा अति प्राचीन काल से ही मानव समाज में विद्यमान थी। वैश्विक संस्कृति स्वभावतः सांस्कृतिक मुठभेड़ के जरिए विकास करता है। विचार, मूल्यों एवं संस्कृतियों में सम्मिश्रण की गति आज जितनी तेज है, वैसी पहले कभी दर्ज नहीं की गयी। वैश्विक संस्कृति का प्रभाव विभिन्न धर्मों की धार्मिकता पर भी दिखायी पड़ता है और उन धर्मों को मानने वाले लोगों पर भी। स्त्री समाज वैश्विक परिवर्तन एवं नयी संस्कृति के प्रभाव से परिवर्तित हुआ, उनमें नये तरह के बदलाव हुए तथा नयी–नयी समस्याओं से उनको सामना करना पड़ा। इन परिवर्तनों एवं बदलावों का प्रभाव स्त्री समाज पर इतना पड़ा कि उनका स्वरूप दिन व दिन बदलता चला गया। वैश्वीकरण ने नयी औरत को जन्म अवश्य दिया, लेकिन नये मर्द को जन्म नहीं दे पाया जो इस 'पावर वुमेन' के साथ नये तरह के नर–नारी संबंधों का सिलसिला शुरू कर सकता। ''पुरुष सफल औरतों को शंकित होकर देखते हैं। वे सांस्कृतिक संकट के शिकार हैं। पुरुष एक खूबसूरत गुड़िया चाहता है जो हर निर्णय में उस पर निर्भर करे, वह दिखाना चाहता है कि बागडोर उसी के हाथ में है। विज्ञापन एजेंसी में काम करने वाली नीरजा देशपांडे अपनी लांसर कार खुद चलाती हैं और एक कामयाब अधिकारी हैं। चूँकि वे पुरुषों के मूर्खतापूर्ण लतीफों पर नहीं हँसती, उन्हें अपनी पलकें फड़फड़ा कर नहीं निहारतीं और दफ्तर के बाद उनसे लिफ्ट नहीं माँगती इसलिए वे पुरुषों की निगाह में कुछ ज्यादा ही मजबूत हैं।''[1]

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श एक ज्वलन्त विषय है, जिस पर चर्चा या बहस काफी समय से होती रही है और होती रहेगी। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की जड़े अत्यंत प्राचीन काल से देखने को मिलती हैं। 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी' उक्ति लिखकर तुलसीदास को भी स्त्रियों की प्रशंसा करनी पड़ी थी। सदी का वर्क बदलने का हिन्दी साहित्य में उभरकर आने वाला स्त्री विमर्श इतना जड़ उपदेशात्मक और इकहरा नहीं रह गया था, लेकिन उसका रेखांकन अब भी पुरुष और परिवार के संदर्भ में किया जाता था। स्त्री विमर्श पर चर्चा करना और उनकी समस्याओं को उठाना हिन्दी साहित्य में जरूरी सा हो गया है। स्त्री उत्पीड़न की एक ओर सार्वभौमिक परम्परा है तो दूसरी ओर मुक्ति की तड़प और अकुलाहट भरी संघर्ष कथा है। ''भारतीय संदर्भ में स्त्री विमर्श दो विपरीत ध्रुवों पर टिका है। एक ओर परम्परागत भारतीय नारी की छवि है जो सीता और सावित्री जैसे मिथकों में अपना मूर्त रूप पाती है, जिसे पश्चिम 'होम मेकर' का नाम देता है, तो दूसरी ओर घर परिवार तोड़ने वाली स्वार्थी और कुलटा रूप में विख्यात तथाकथित आधुनिकता एवं पाश्चात्य नारी की छवि है जो अक्सर सातवें, आठवें दशक की पुरानी फिल्मों में खलनायिका के रूप में उकेरी जाती हैं, जिसे पाश्चात्य शब्दावली में 'होम ब्रेकर' कहा जा सकता है।''[2]

स्त्री लेखन की परम्परा साहित्य में काफी पुरानी है। भारतीय समाज में स्त्री की गुलामी का इतिहास जितना पुराना है, उस गुलामी से मुक्ति के लिए स्त्री के संघर्ष का इतिहास भी उतना ही

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

पुराना है। ''मध्यवर्गीय औरतों में उनकी कुंठा, निषेध प्रधान, आचरण संहिता या यौन शुचिता की ग्रन्थि उन्हें अधिक कमजोर बनाती है और उन्हें इस हद तक हीन भावना का शिकार बना देती है कि उनमें आज सम्मान या स्वाभिमान नाम मात्र भी नहीं बच पाता। आर्थिक तौर पर पुरुष आश्रित व्यवस्था भी उनको अधिक कमजोर कर देती है।''[3]

वैश्वीकरण ने स्त्री चेतना के क्षितिज को सबसे ज्यादा विस्तार दिया है। विज्ञान, तकनीक, खेल, राजनीति, कार्पोरेट जगत कई क्षेत्रों में स्त्रियों ने अपनी मेधा एवं श्रम द्वारा पहचान बनायी है। आधुनिक समाज में मध्यवर्ग का विस्तार हुआ है। नौकरी, पेशा, स्वावलम्बी औरतों का समूह उभरा तो वे नयी समस्याओं से भी रूबरू हुयीं। ''मानव समाज जब से शोषक और शोषित में बँटा है तभी से उनके बीच संघर्षों का एक अटूट सिलसिला आज तक चला आ रहा है। शोषित में भी शोषित औरत की गुलामी और उसके खिलाफ प्रतिरोध की एक परम्परा रही है। आज भी बदली हुयी परिस्थितियाँ और नारी दासता के बदले हुए रूपों के विरूद्ध औरत का संघर्ष जारी है और उसके निर्णायक की सम्भावनाएँ दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं।''[4]

वैश्वीकरण, बाजारवाद तथा भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्रियों को नये–नये तरीके से स्थापित किया जाता रहा है। 'महादेवी वर्मा' ने साहित्य में स्त्री के भागीदारी के प्रश्न को अहम माना है, क्योंकि यही वह क्षेत्र है जहाँ से मुक्ति की शुरूआत की जा सकती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, नारी की स्वतंत्रता से अभिन्न रूप से जुड़ी है और इसके लिए स्त्री को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। हमारे समाज में जिस सैंसरशिप की चर्चा आज है, उसको महादेवी जी ने अपने समय में महसूस किया था, तभी उन्होंने कहा है ''भारतीय पुरुष जीवन में नारी का जितना ऋणी है, उतना कृतज्ञ नहीं हो सका है, अन्य क्षेत्रों की भाँति साहित्य में उसकी स्वभावगत संकीर्णता का परिचय मिलता रहा है।''[5]

आज भी स्त्री विमर्श विभाजन का शिकार है, कई आवश्यक और अनावश्यक मुद्दे विवादास्पद हैं, जैसे साहित्य में स्त्री–पुरुष दृष्टि, स्त्री साहित्य, साहित्य इतिहास में स्त्री और पृथक इतिहास की आवश्यकता, सेंसरशिप, स्त्री और भाषा आदि। 'औरत की आजादी' के आंदोलन को आज नाना प्रकार की प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ रहा है। स्त्रियाँ समाज के जिस महकमे से निकलकर पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहीं हैं। वह उनकी प्रगति की ओर बढ़ते कदम को दर्शाते हैं, ''सुन्दर, स्मार्ट, आँधी की तरह अंग्रेजी बोलने वाली उच्च और उच्च मध्यवर्ग की यह स्त्री भूमण्डलीकरण के गर्भ से निकली कम तनख़्वाह पाने वाली और गंदी बस्ती में रहने वाली औरत से भिन्न है। वह पुरुषों पर हुक्म चला सकती है और उसका वेतन जैविक रूप से पुरुष न होने के कारण कम नहीं है।''[6]

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के ढाँचे को ही बदल दिया है। स्त्रीवादी आन्दोलनों एवं लोकतांत्रिक चेतना के विकास के फलस्वरूप स्थिति पहले से कुछ भिन्न अवश्य हुयी है। वर्तमान समय का स्त्री संघर्ष उसकी अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के बचाव को लेकर था। इतिहासकार डोनाल्डसन ने कहा है कि ''पुरुष नर मनुष्य है और स्त्री मादा मनुष्य लेकिन मनोविश्लेषकों ने पुरुषों को मनुष्य और स्त्री को केवल मादा माना और कहा कि जब भी स्त्री मनुष्य की तरह व्यवहार करती है उसे पुरुषों की नकल की कोशिश बता दिया जाता है।''[7]

आधुनिक युग का नारीवादी चिंतन (नैतिकता + यौनिकता) का आपरेशन करना चाहता है। स्त्री विमर्शकार एवं चिंतक इस निष्कर्ष पर पहले ही काफी संघर्ष करके लिख चुके हैं कि नैतिकता पितृसत्तात्मक षड्यंत्रों की कड़ी के रूप में उभरकर सामने आता है। सच, न्याय और परोपकार जैसे मूल्य अपनी जगह ठीक हैं, लेकिन स्त्री–पुरुष यौन संबंधी नैतिकता पूरी तरह से एकपक्षीय एवं स्त्री–व्यक्तित्व–विरोधी है। वैश्वीकरण के शुरूआती वर्षों के दौरान नारी आंदोलन के पास अपना कोई स्थापित सिद्धांतशास्त्र न था जिसकी रोशनी में वे इस नये युग का आंकलन कर पाती। ''जब भूमण्डलीकरण का उद्घोष हुआ तो अमीर देशों में नारीवाद को शक्तिहीन माना जा चुका था और भूमण्डलीकरण द्वारा किये गये लैंगिक तटस्था के

दावे का प्रतिकार करने के लिए नारीवाद के पास पर्याप्त बौद्धिक औजार नहीं थे। दस वर्ष तक अपने कारखाने में औरत के श्रम और शरीर से अतिरिक्त मूल्य कमाने के बाद अब भूमण्डलीकरण का दावा है कि नर–नारी संबंध या तो बदल गये हैं या बदलने की दहलीज पर खड़े हैं।''[8]

वैश्वीकरण के उपरांत स्त्रियों के लिए अनेक अवसरों के द्वार खुले हैं। रोजगार के अवसर सुलभ हो गये हैं। वैश्वीकरण ने सम्पूर्ण दुनिया को एक गाँव में बदल दिया है विश्व के किसी भी क्षेत्र में होने वाला बदलाव लगभग सभी स्त्रियों को कम या ज्यादा मात्रा में प्रभावित करता है। ''काम की तलाश में राज्यों की सीमायें पार करती कार्यरत महिलाओं को तरह–तरह के अनुभव होते हैं, जिनमें मुक्तिकारक अहसास से लेकर हर दर्जे का शोषण व बेहद खतरनाक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।''[9]

वैश्विक दौर के उपरांत नये जमाने की समाज व्यवस्था ने स्त्रियों को दोहरी मार देकर उनको दिशाभ्रमित कर दिया है। सामंती समाज की पराधीनता से मुक्ति की ओर आते–आते स्त्रियाँ एक नये समाज में आकर अपने आप को पहले से ज्यादा पराधीन महसूस कर रहीं हैं। आज की स्त्रियाँ व्यक्तिगत तौर पर पुराने तरीके से जीने से इंकार कर रहीं हैं। लेकिन इस नकार के साथ ही उनके सामने नारी मुक्ति का सपना साकार हो, यह जरूरी नहीं है। ''हमारे देश में सामंतवाद अवशेष के रूप में बचा हुआ है, सामंती मूल्य मान्यताओं का प्रभाव आज भी है लेकिन यह धन पर आधारित, शोषण पर आधारित समाज का सहयोगी बनकर ही अपनी भूमिका निभा रहा है। इसका आधार राजे रजवाड़े और पुराने सामंत नहीं हैं बल्कि पूँजी के मालिक समाज के नये शोषक हैं।''[10]

वैश्वीकरण, उदारवाद तथा बाजारवाद के विश्वव्यापी प्रचार–प्रसार के साथ चिंतन, कला, विचारधारा एवं साहित्य में तीव्रता से परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन ने स्त्री समाज को भी पोषित एवं पल्लवित किया। जहाँ सामंती शिंकजे में जकड़ी स्त्रियाँ, देश के स्वतंत्र होने के पश्चात स्वयं को भी स्वतंत्र समझ रही थीं परन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से ऐसा हुआ नहीं। वह आज भी पितृसत्तात्मक समाज की सोच और विचारधारा का शिकार हो रही हैं। सामंती असम्प्रक्तता की जगह आज पूँजीवादी अलगाव ने ले ली है। आज की नारी पराधीन है, पुरुष प्रधान समाज उसकी पराधीनता को चिरजीवी बनाये रखने में सहायक है इसका सबसे निष्कृष्ट रूप नारी को चूल्हे, चौके, संतान उत्पादन और उसके लालन–पालन तक सीमित रखना। ''वैश्वीकरण और उदारीकरण के नाम पर भारतीय शासक अपने देश की जनता के खिलाफ विदेशी लुटेरों के साथ गठजोड़ कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री को गुलाम बनाने के नये–नये हथकंडे अपनाये जा रहे हैं। बाजार को एकमात्र नियंता के रूप में प्रतिष्ठित करने के बाद औरतों को भी उपभोक्ता वस्तु के रूप में तब्दील कर बाजार में उतारा जा रहा है। नारी देह को भरपूर मुनाफा कमाने का साधन बनाया जा रहा है। मुक्ति के सपने को बाजारू व्यवस्था अपने प्रचार माध्यमों में भरपूर प्रयोग कर रही है। देशी विदेशी पूँजी के गठजोड़ के कारण देश में जो नये तरह की गुलामी थोपी गयी है उसका सबसे ज्यादा असर महिलाओं पर हुआ है।''[11]

भारत के बहुस्तरीय सामाजिक ढाँचे में स्त्री का संघर्ष सिर्फ देह की स्वतंत्रता या लिंग की लड़ाई तक सीमित नहीं है, यहाँ स्त्री को कई मोर्चों पर एक साथ लड़ना है। स्त्रियाँ अस्तित्व, अस्मिता व समाज में समानता का स्तर पाने के लिए संघर्षरत हैं। ''वैसे तो जैविक तौर पर औरत पुरुष से भिन्न होती है, आकार–प्रकार में भी वह अलग होती है। पुरुष और पितृसत्तात्मक समाज दोनों ने ही स्त्री को स्त्री होने के कारण हमेशा अलग प्रजाति की तो माना लेकिन उसकी जातिगत स्वतंत्र अस्मिता को कभी नहीं स्वीकारा।''[12] पुरुष ने स्वयं को विशुद्ध चित्त के रूप में परिभाषित किया है और स्त्रियों की स्थिति का अमूल्यन करते हुए अन्य के रूप में परिभाषित किया है। इस प्रकार स्त्रियों को वस्तुरूप में निरूपित किया गया है।

नारीवाद स्त्री–पुरुष समानता की ही नहीं, भिन्नता की दावेदारी भी करता है। जब समानता के आग्रह भिन्नता के माध्यम से संसाधित होते हैं तो एक जटिल विमर्श पैदा होता है जिसकी अभिव्यक्ति

हिन्दी में कुछ नारीवादी विदुषियों में दिखाई पड़ती है, पर सांस्कृतिक राजनीति के प्रचलित दायरे में अभी यह अनुपस्थित है। अगर भारतीय समाज में रिश्तों के धरातल पर होने वाले परिवर्तनों को समझना है तो हमें नारीवाद द्वारा भिन्नता के जरिए संसाधित होने वाली समानता और सेक्शुअलिटी के धंधे बनते जा रहे स्त्री और पुरुषों के मानस का संधान करना ही होगा।

वैश्वीकरण के दौर से लेकर भूमण्डलीकरण, बाजारवाद के साँचे में स्त्रीवादी चिंतन के हर पहलू को देखा गया। स्त्रियाँ जहाँ वैश्वीकरण के घेरे में खड़ी होकर अपने आपको स्वतंत्र महसूस कर रही हैं, हकीकत में वह और ही कुछ है। स्त्रियाँ पराधीनता से मुक्ति के सफर में पुरुष एवं पितृसत्तात्मक समाज द्वारा सोची समझी चाल का शिकार हो रहीं हैं। मॉडलिंग, विज्ञापन बाजार एवं प्रोडक्टों के बेचने में उनका बड़े स्तर पर शोषण हो रहा है। स्त्रियाँ लगातार यौन हिंसा और यौन नैतिकता का शिकार हो रहीं हैं। पितृसत्ता पूरी जड़ता और व्यापकता के साथ सम्पूर्ण समाज में जहर की तरह फैल गयी है, इसके विरूद्ध छेड़ा गया आन्दोलन दीर्घकालिक और बहुकोणिक ही हो सकता है। अगर समय के साथ हमारी नैतिकताएँ एवं जीवन मूल्य नहीं बदलते हैं तो हमारा सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन कभी सहज, सरल और सरस नहीं हो पायेगा।

संदर्भ –

1. भारत का भूमण्डलीकरण, संपा. अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नये रूप, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृ.242
2. www.jagranjunction.com/2013/10/20/ स्त्री विमर्श के कुछ सुलग
3. स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, रमणिका गुप्ता, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.10
4. aadhiduniasajhidunia.blogspot.in2012/11/blog_post.html,p.1
5. श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, भारती भंडार प्रेस, इलाहाबाद, पृ.57
6. भारत का भूमण्डलीकरण, संपा. अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नये रूप, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृ.236
7. आज के प्रश्न, संपा. राजकिशोर, लेख मस्तराम कपूर, पृ.23
8. फुटपाथ पर कामसूत्र, अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, पृ.142
9. http://www.rachonakar.org/2015/05/blog_post_81.html=1
10. aadhiduniasajhidunia.blogspot.in2012/11/blog_post.html,p.3
11. aadhiduniasajhidunia.blogspot.in2012/11/blog_post.html,p.3
12. स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, रमणिका गुप्ता, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.30